# NCERT Solutions for Class 12 History Chapter 8 (Hindi Medium)

**अभ्यास-प्रश्न**
**(NCERT Textbook Questions Solved)**

**उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)**

**प्रश्न 1.**
कृषि इतिहास लिखने के लिए आइन को स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने में कौन-सी समस्याएँ हैं? इतिहासकार इन समस्याओं से कैसे निपटते हैं?
**उत्तर:**
आइन में कृषि इतिहास के सन्दर्भ में संख्यात्मक आँकड़ों की दृष्टि से विषमताएँ पाई गई हैं। सभी सूबों से आँकड़े एक ही शक्ल में नहीं एकत्रित किए गए। मसलन, जहाँ कई सूबों के लिए जमींदारों की जाति के मुतलिक विस्तृत सूचनाएँ संकलित की गईं, वहीं बंगाल और उड़ीसा के लिए ऐसी सूचनाएँ मौजूद नहीं हैं। इसी तरह, जहाँ सूबों से लिए गए राजकोषीय आँकड़े बड़ी तफ़सील से दिए गए हैं, वहीं उन्हीं इलाकों से कीमतों और मज़दूरी जैसे इतने ही महत्त्वपूर्ण मापदंड इतने अच्छे से दर्ज नहीं किए गए हैं।

कीमतों और मजदूरी की दरों की जो विस्तृत सूची आइन में दी गई है, वह साम्राज्य की राजधानी आगरा या उसके इर्द-गिर्द के इलाकों से ली गई है। जाहिर है कि देश के बाकी हिस्सों के लिए इन आँकड़ों की प्रासंगिकता सीमित है। इतिहासकार आमतौर पर यह मानते हैं कि इस तरह की समस्याएँ तब आती हैं जब व्यापक स्तर पर इतिहास लिखा जाता है। आँकड़ों के संग्रह की अधिकता से छोटी-मोटी चूक होना आम बात है और इससे किताबों के आँकड़ों की सच्चाई को कम करके नहीं आँका जा सकता।

**प्रश्न 2.**
सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कृषि उत्पादन को किस हद तक महज़ गुज़ारे के लिए खेती कह सकते हैं? अपने उत्तर के कारण स्पष्ट कीजिए।
**उत्तर:**
16वीं-17वीं सदी में दैनिक आहार की खेती पर ज्यादा जोर दिया जाता था, लेकिन इसका यह मतलब नहीं था कि उस काल में खेती केवल गुजारा करने के लिए की जाती थी। तत्कालीन स्रोतों में जिन्स-ए-कामिल अर्थात् सर्वोत्तम फ़सलें जैसे लफ्ज़ मिलते हैं। मुगल राज्य किसानों को ऐसी फ़सलों को खेती करने के लिए बढ़ावा देता था, क्योंकि इनसे राज्य को ज्यादा कर मिलता था। कपास और गन्ने जैसी फ़सलें बेहतरीन जिन्स-ए-कामिल थीं। चीनी, तिलहन और दलहन भी नकदी फ़सलों के अंतर्गत आती थीं। इससे पता चलता है कि एक औसत किसान की ज़मीन पर किस तरह पेट भरने के लिए होने वाले उत्पादन और व्यापार के लिए किए जाने वाले उत्पादन एक-दूसरे से जुड़े थे।

**प्रश्न 3.**
कृषि उत्पादन में महिलाओं की भूमिका का विवरण दीजिए।

**अथवा**


https://www.evidyarthi.in/

16 वीं-17वीं शताब्दियों के दौरान मुगल साम्राज्य के अंतर्गत कृषि समाज में महिलाओं की भूमिका स्पष्ट कीजिए। (Foreign 2014)
**उत्तर:**
मध्यकालीन भारतीय कृषि समाज में उत्पादन प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। खेतिहर अर्थात् किसान परिवारों
से संबंधित महिलाएँ कृषि उत्पादन में सक्रिय सहयोग प्रदान करती थीं तथा पुरुषों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर खेतों में काम करती थीं। पुरुष खेतों की जुताई और हल चलाने का काम करते थे। महिलाएँ मुख्य रूप में बुआई, निराई तथा कटाई का काम करती थीं और पकी हुई फ़सल का दाना निकालने में भी सहयोग प्रदान करती थीं। वास्तव में मध्यकाल, विशेष रूप से 16वीं और 17वीं शताब्दियों में ग्रामीण इकाइयों एवं व्यक्तिगत खेती का विकास होने के कारण घर-परिवार के संसाधन श्रम उत्पादन को प्रमुख आधार बन गए थे।

अतः महिलाओं और पुरुषों के कार्य क्षेत्र में एक विभाजक रेखा खींचना (अर्थात् घर के लिए महिला और बाहर के लिए पुरुष) कठिन हो गया था। उत्पादन के कुछ पहलू; जैसे-सूत कातना, बरतन बनाने के लिए मिट्टी को साफ़ करना और गूँधना, कपड़ों पर कढ़ाई करना आदि मुख्य रूप से महिलाओं के श्रम पर ही आधारित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी वस्तु के वाणिज्यीकरण के साथ-साथ उसके उत्पादन के लिए महिला-श्रम की माँग में भी वृद्धि होने लगती थी। किसान और दस्तकार महिलाएँ न केवल खेती में सहयोग प्रदान करती थीं अपितु आवश्यकता होने पर नियोक्ताओं के घरों में भी काम करती थीं और अपने उत्पादन को बेचने के लिए बाजारों में भी जाती थीं। उल्लेखनीय है कि श्रम प्रधान समाज में महिलाओं को श्रम का एक महत्त्वपूर्ण संसाधन समझा जाता था, क्योंकि उनमें बच्चे उत्पन्न करने की क्षमता थी।

किन्तु बार-बार बच्चों को जन्म देने तथा प्रसव के समय मृत्यु हो जाने के कारण महिलाओं की मृत्युदर बहुत ऊँची थी। अतः समाज में विवाहित महिलाओं की संख्या अधिक नहीं थी। भूमिहर भद्रजनों अर्थात् ज़मींदारों के परिवारों में महिलाओं के पुश्तैनी सम्पत्ति के अधिकारों को मान्यता प्रदान की जाती थी। तत्कालीन पंजाब के दस्तावेज़ों में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें महिलाओं, मुख्य रूप से विधवाओं के पुश्तैनी सम्पत्ति के विक्रेता के रूप में अधिकारों की पुष्टि की गई है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पति की मृत्यु के बाद विधवी का उसका पुश्तैनी सम्पत्ति में भाग स्वीकार किया जाता था। समकालीन स्रोतों में उपलब्ध उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि अनेक हिन्दू और मुस्लिम महिलाओं ने उत्तराधिकार में जमींदारियाँ प्राप्त की थीं।

वे उन ज़मींदारियों को बेच सकती थीं अथवा गिरवी भी रख सकती थीं। बंगाल में भी महिला ज़मींदारों का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए, 18वीं शताब्दी की सर्वाधिक विशाल एवं प्रसिद्ध जमींदारी की कर्ताधर्ता एक महिला थी। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि महिलाओं की जैव-वैज्ञानिक क्रियाओं से संबंधित पूर्वाग्रह अब भी विद्यमान थे। उदाहरण के लिए, पश्चिमी भारत में रजस्वला महिलाएँ हल अथवा कुम्हार के चाक को नहीं छू सकती थीं। इसी प्रकार बंगाल में महिलाओं को मासिक धर्म की अवधि में पान बागानों में जाने की मनाही थी।

**प्रश्न 4.**
विचाराधीन काल में मौद्रिक कारोबार की अहमियत की विवेचना उदाहरण देकर कीजिए।
**उत्तर:**
16वीं और 17वीं शताब्दियों में कृषि अर्थव्यवस्था में मौद्रिकीकरण का उल्लेखनीय विस्तार हुआ और वस्तु विनिमय पर आधारित
अर्थव्यवस्था का स्थान मुद्रा अर्थव्यवस्था ने ले लिया। मुगल सम्राटों की वित्तीय एवं आर्थिक


https://www.evidyarthi.in/

नीतियों के कारण साम्राज्य में मुद्रा का संचरण बढ़ने लगा। शाही टकसाल में खुली सिक्का-ढलाई की पद्धति ने मुद्रा संचरण को और अधिक विस्तृत बनाया। शीघ्र ही मौद्रिक कारोबार के महत्त्व में वृद्धि होने लगी। मुगल सम्राटों की राजस्व नीति ने मुद्रा अर्थव्यवस्था की संवृद्धि में विशेष रूप से योगदान दिया। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में ही राज्य द्वारा किसानों को यह छूट दे दी गई कि वे भू-राजस्व का भुगतान नकद अथवा जिन्स के रूप में कर सकते थे। इस सुविधा के परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में मौद्रिक कारोबार के महत्त्व में वृद्धि होने लगी। यह सत्य है कि इस काल में ग्रामों में दस्तकार विशाल संख्या में रहते थे और उन्हें उनकी सेवाओं के बदले प्रायः जिन्स के रूप में अर्थात् उत्पादन के रूप में भुगतान किया जाता था।

किन्तु हमें इस काल में सेवाओं के बदले नकद भुगतान के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए, 18वीं शताब्दी के स्रोतों में बंगाल में 'जजमानी' नामक एक व्यवस्था का उल्लेख मिलता है, इसके अंतर्गत बंगाल में जमींदार लोहारों, बढ़इयों और सुनारों तक को उनकी सेवाओं के बदले रोज़ का भत्ता तथा रखने के लिए नकदी देते थे। विचाराधीन काल में ग्रामों और शहरों के मध्य होने वाले व्यापार के परिणामस्वरूप ग्रामों के कारोबार में भी मौद्रिकीकरण का महत्त्व बढ़ने लगा था। ग्राम समुदाय महाजनों और बनजारों के माध्यम से कस्बों और शहरों को अनाज भेजते थे। इस प्रकार ग्रामों में पैसा वापस आ जाता था। मुगल साम्राज्य के केन्द्रीय क्षेत्रों में कर की गणना और वसूली भी नकद रूप में की जाती थी। किसान सुविधा एवं इच्छानुसार अनाज अथवा नकद रूप में भू-राजस्व का भुगतान कर सकते थे, किन्तु राज्य नकद रूप में भू-राजस्व प्राप्त करना अधिक अच्छा समझता था।

निर्यात के लिए उत्पादन करने वाले दस्तकारों को भी उनकी मज़दूरी का भुगतान अथवा अग्रिम भुगतान नकद रूप में ही किया जाता था। व्यावसायिक फ़सलों के उत्पादन ने भी मौद्रिक कारोबार में वृद्धि की। कपास, रेशम अथवा नील जैसी फ़सलें पैदा करने वाले अपनी फ़सलों का भुगतान नकदी में ही प्राप्त करते थे। यही कारण है कि हमें 17वीं शताब्दी के सभी भारतीय ग्रामों में सराफ़ों का उल्लेख मिलता है। ज़मींदारियों के विस्तार ने भी मौद्रिकीकरण के विकास को बढ़ावा दिया। जमींदारों ने किसानों को कृषि योग्य भूमि के विस्तार के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने किसानों को कृषि संबंधी उपकरण तथा उधार देकर वहाँ बसने में सहायता प्रदान की। जमींदारियों के क्रय-विक्रय ने ग्रामों में मौद्रिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र बनाया। ज़मींदार किसानों से राजस्व की माँग नकद रूप में करते थे। वे अपने स्वामित्व की जमीनों की फ़सल भी बेचते थे। समकालीन स्रोतों से पता चलता है कि ज़मींदार प्रायः अपने बाजारों अथवा मंडियों की स्थापना कर लेते थे।

किसान यहाँ अपनी फ़सल बेचकर नकदी प्राप्त कर लेते थे और जमींदार को कर का भुगतान भी कर देते थे। कारोबार में मौद्रिकीकरण का महत्त्व बढ़ने के परिणामस्वरूप किसान उन्हीं फ़सलों के उत्पादन पर बल देने लगे, जिनकी बाजार में पर्याप्त माँग थी और जिनकी अच्छी कीमत मिलती थी। व्यापार के विस्तार ने भी मौद्रिकीकरण को प्रोत्साहन दिया। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का भुगतान करने के लिए भारी मात्रा में चाँदी भारत आने लगी। उल्लेखनीय है कि भारत में चाँदी के प्राकृतिक संसाधन नहीं थे। इस प्रकार बाहर से विशाल मात्रा में चाँदी आना भारत के लिए वरदान सिद्ध हुआ। इसके परिणामस्वरूप 16वीं से 18वीं शताब्दी के काल में भारत में धातु मुद्रा, विशेष रूप से चाँदी के रुपयों की उपलब्धि में स्थिरता बनी रही। इससे वहाँ एक ओर अर्थव्यवस्था में मुद्रा-संचरण को बढ़ावा मिला तथा सिक्की ढलाई के कार्य का विस्तार हुआ वहीं दूसरी ओर साम्राज्य को अधिकाधिक राजस्व नकद रूप में प्राप्त होने लगा।


https://www.evidyarthi.in

**प्रश्न 5.**
उन सबूतों की जाँच कीजिए जो ये सुझाते हैं कि मुगल राजकोषीय व्यवस्था के लिए भू-राजस्व बहुत महत्त्वपूर्ण था।
**उत्तरः**
'वित्त' साम्राज्य रूपी शरीर का मेरुदंड होता है। अतः लगभग सभी मुगल सम्राट साम्राज्य को सुदृढ़ वित्तीय आधार प्रदान करने
के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। जजिया, जकात, खम्स, खिराज, व्यापार, टकसाल, अधीन राजाओं और मनसबदारों से समय-समय पर प्राप्त होने वाले उपहार, उत्तराधिकारीविहीन सम्पत्ति, व्यापारिक एकाधिकार, राज्य द्वारा चलाए जाने वाले उद्योग, विभिन्न प्रकार की चुगियाँ आदि राज्य की आय के अनेक साधन थे। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान भू-राजस्व का था। भू-राजस्व ही साम्राज्य की आर्थिक बुनियाद का आधार था। अत: कृषि उत्पादन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए तथा तीव्र गति से विस्तृत होते हुए साम्राज्य के सभी क्षेत्रों में राजस्व के आकलन एवं वसूली के लिए एक प्रशासनिक तंत्र का निर्माण करना नितांत आवश्यक हो गया।

दीवान अथवा वित्त मंत्री, जो संपूर्ण राज्य की वित्तीय व्यवस्था की देख-रेख के लिए उत्तरदायी था, इस तंत्र में सम्मिलित था। वित्त के साथ-साथ राजस्व विभाग भी उसी के नियंत्रण में था। इस प्रकार आय-व्यय का हिसाब रखने वाले अधिकारियों और राजस्व अधिकारियों ने कृषि-जगत में प्रवेश किया और शीघ्र ही वे कृषि-संबंधों के निर्धारण में एक निर्णायक शक्ति बन गए। लोगों पर कर का भार निर्धारित करने में पहले मुगल राज्य ने जमीन और उस पर होने वाले उत्पादन के विषय में विशेष सूचनाएँ इकट्ठा करने का प्रयास किया। कर निर्धारण और वास्तविक वसूली भू-राजस्व के प्रबंध के दो महत्त्वपूर्ण चरण थे। अकबर प्रथम मुगल सम्राट था, जिसने भू-राजस्व व्यवस्था को सुचारु रूप से व्यवस्थित किया और मध्ययुग की सर्वोत्तम भू-राजस्व प्रणाली का निर्माण किया।

उसने अपने सुयोग्य वित्तमंत्री राजा टोडरमल के सहयोग से भू-राजस्व व्यवस्था के क्षेत्र में जिस प्रशंसनीय प्रणाली को स्थापित किया, वह संपूर्ण मुगलकाल में भू-राजस्व व्यवस्था का प्रमुख आधार बनी रही। इस प्रणाली को इतिहास में दहसाला प्रबंध, आइन-ए-दहसाला, जब्ती-प्रणाली एवं राजा टोडरमल की भू-राजस्व पद्धति आदि नामों से जाना जाता है। अकबर के शासनकाल में भू-राजस्व की दो अन्य प्रणालियाँ भी प्रचलित थीं। ये थीं-1. गल्लाबख्शी प्रणाली 2. नस्क अथवा कनकूत प्रणाली। दहसाला व्यवस्था 1580 ई0 में साम्राज्य के आठ महत्त्वपूर्ण प्रांतों-दिल्ली, आगरा, अवध, इलाहाबाद, मालवा, अजमेर, लाहौर और मुल्तान में प्रचलित की गई।

दहसाला व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ1. भूमि की पैमाइश – इस प्रणाली के अंतर्गत ऊपर लिखे गए आठों प्रांतों की समस्त कृषि योग्य भूमि की पैमाइश 41-अंगुल | वे इलाही गज से करवाई गई। 2. भूमि का वर्गीकरण – पैमाइश के बाद काश्त की निरंतरता के आधार पर समस्त भूमि को पोलज, परौती, चचर और बंजर इन चार भागों में विभक्त कर दिया गया। पोलज सर्वाधिक उपजाऊ भूमि थी जिस पर सदैव काश्त होती थी। परौती अपेक्षाकृत कम उपजाऊ थी। दो-तीन वर्ष तक निरंतर खेती करने के उपरांत इसे एकाध वर्ष के लिए परती (खाली) छोड़ दिया जाता था। छज्छर भूमि को एक फ़सल के बाद पुनः उर्वरा-शक्ति प्राप्त करने के लिए तीन-चार वर्ष के लिए खाली छोड़ना पड़ता था।

बंजर सर्वाधिक निम्नकोटि की भूमि थी। राज्य का भाग निश्चित करना । जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कर निर्धारण और वास्तविक वसूली मुगल भू-राजस्व प्रबन्ध के दो महत्त्वपूर्ण चरण थे। वास्तविक वसूली अर्थात् वास्तव में वसूल की जाने वाली रकम हासिल के नाम से जानी जाती थी। राज्य राजस्व निर्धारण के समय अपना भाग अधिक-से-अधिक


https://www.evidyarthi.in

रखने का प्रयत्न करता था, किंतु स्थानीय परिस्थितियों के कारण कभी-कभी वास्तव में इतनी वसूली नहीं हो पाती थी, इसलिए जमा और हासिल में काफी अंतर हो जाता था। 'पोलज' और 'परौती' श्रेणियों की भूमि से राज्य उपज का 1/3 भाग भू-राजस्व के रूप में लेता था। नकद मूल्य निश्चित करना ।

कर को नकद दर (दस्तूर) में परिवर्तित करने के लिए भिन्न-भिन्न हलकों की पिछले दस वर्षों की औसत दरों के आधार पर दर-सूचियाँ (रे) तैयार की जाती थीं और उन सूचियों के आधार पर राज्य का भाग अनाज़ से नकद धनराशि के रूप में परिवर्तित कर लिया जाता था। राज्य नकद रूप में भू-राजस्व प्राप्त करना अधिक अच्छा समझता था। गल्ला बख्शी प्रणाली सिंध, कश्मीर, काबुल, कंधार और गुजरात में भू-राजस्व की परम्परागत प्रणाली ही प्रचलित रही, जिसे गुल्ला बख्शी अथवा बटाई के नाम से जाना जाता है।

नस्क अथवा कनकूत प्रणाली : मुगल साम्राज्य के कुछ भागों; जैसे- बंगाल, उड़ीसा और बरार में नस्क अथवा कनकूत प्रणाली का प्रचलन था। भूमि-कर वर्ष में दो बार (पहली बार रबी की फ़सल और दूसरी बार खरीफ़ की फ़सल पकने पर) सीधे किसानों से वसूल किया जाता था। सरकार की ओर से किसान को 'पट्टा' नामक एक पत्र दिया जाता था और किसान 'कबूलियतनामा' पर हस्ताक्षर करके सरकार को देता था। भू-राजस्व प्रबंध के संबंध में उठाए गए इन कदमों से यह भली-भाँति
स्पष्ट हो जाता है कि मुगल राजकोषीय व्यवस्था के लिए भू-राजस्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था।

**निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)**

**प्रश्न 6.**
आपके मुताबिक कृषि समाज में सामाजिक व आर्थिक संबंधों को प्रभावित करने में जाति किस हद तक एक कारक थी?
**उत्तर:**
16वीं-17वीं शताब्दियों के काल में भारत एक कृषि प्रधान देश था। देश की लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास
करती थी और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से संबंधित थी। ग्राम कृषक समाज की मौलिक इकाई था। किसान ग्रामों में रहकर कृषि कार्य करते थे। वे पूरा साल अलग-अलग मौसम में पैदावार से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों; जैसे- जमीन की जुताई, बुवाई (बीज बोना) और कटाई में व्यस्त रहते थे। कृषि समाज में सामाजिक-आर्थिक संबंधों के निर्धारण में जाति की भूमिका कठोर जाति-व्यवस्था भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। समाज अनेक जातियों तथा उपजातियों में विभक्त था जिनकी संख्या दो हजार से भी अधिक थी।

उच्च जाति के लोग निम्न जातियों से घृणा करते थे तथा उनसे किसी प्रकार का संबंध नहीं रखते थे। निम्न जातियों के लोग विशेषतः शूद्र जिनकी संख्या कुल हिन्दू जनसंख्या को लगभग बीस प्रतिशत थी, सवर्ण अर्थात् उच्च जातीय हिन्दुओं द्वारा अछूत समझे जाते थे। व्यवसाय जाति के आधार पर निर्धारित किए जाते थे। स्वाभाविक रूप से कृषि समाज में सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों के निर्धारण में जाति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती थी। जाति एवं जाति जैसे अन्य भेदभावों ने खेतिहर किसानों को अनेक भागों में विभक्त कर दिया था। यद्यपि कृषि योग्य भूमि का अभाव नहीं था तथापि कुछ जातियों के लोगों से केवल निम्न समझे जाने वाले कार्य ही करवाये जाते थे। खेतों की जुताई का कार्य अधिकांशतः ऐसे लोगों से करवाया जाता था, जो सवर्ण हिन्दुओं द्वारा निम्न समझे जाने वाले कार्यों को करते थे अथवा खेतों में मजदूरी करते थे। जाति संस्था के नियंत्रणों के कारण उनके पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन नहीं होते थे। परिणामस्वरूप, ग्रामीण समुदाय के एक विशाल भाग का निर्माण करने वाले ये लोग विवशतापूर्वक दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते थे।


https://www.evidyarthi.in/

उच्च जातीय हिन्दू शूद्रों से घृणा करते थे और उनके साथ किसी प्रकार का सामाजिक मेलजोल नहीं रखते थे। हिन्दुओं के घनिष्ठ सम्पर्क में रहते-रहते मुसलमानों में भी जातीय भेदभावों को प्रसार होने लगा था। निम्न जातीय हिन्दुओं के समान निम्न जातीय मुसलमानों को भी गरीबी और तंगहाली का जीवन जीना पड़ता था। वे न तो उच्च जातीय मुसलमानों की बस्तियों में रह सकते थे और न उनके साथ सामाजिक संबंध स्थापित कर सकते थे। मुस्लिम समुदायों में हलालखोरान जैसे नीच कामों को करने वाले लोग ग्राम की सीमाओं के बाहर रहते थे। इसी प्रकार बिहार में मल्लाहज़ादाओं को निम्न जातीय समझा जाता था। उनकी स्थिति दासों से बेहतर नहीं थी। निम्न जातियों से संबंधित लोगों, चाहे वे हिन्दू थे अथवा मुसलमान, को न तो समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था और न ही उनकी आर्थिक दशा अच्छी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकालीन भारतीय समाज में जाति, गरीबी और सामाजिक स्तर के मध्य प्रत्यक्ष संबंध था। उदाहरण के लिए, यद्यपि ग्राम पंचायत में भिन्न-भिन्न जातियों और सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व होता था, किन्तु इसमें छोटे-मोटे एवं 'नीच' काम करने वाले खेतिहर मजदूरों को संभवतः कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि समाज में सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों का निर्धारण मुख्य रूप से जाति द्वारा ही किया जाता था। उल्लेखनीय है कि कृषि समाज के मध्यम वर्गों में स्थिति इस प्रकार की नहीं थी। उदाहरण के लिए, 17वीं शताब्दी में मारवाड़ में लिखी गई एक पुस्तक में राजपूतों का उल्लेख किसानों के रूप में किया गया है। इस पुस्तक में जाटों को भी किसान बताया गया है, किन्तु जाति व्यवस्था में उन्हें राजपूतों की अपेक्षा नीचा स्थान दिया गया था।

इसी प्रकार आधुनिक उत्तर प्रदेश के वृन्दावन क्षेत्र में रहने वाले गौरव समुदाय के लोग शताब्दियों से ज़मीन की जुताई का कार्य करते थे, किन्तु 17वीं शताब्दी में उनके द्वारा राजपूत होने का दावा किया गया। पशुपालन तथा बागवानी के काम को करने वाले अहीर, गुज्जर और माली जैसी जातियों का सामाजिक स्तर भी उनकी आर्थिक उन्नति के साथ-साथ उन्नत होने लगा। पूर्वी क्षेत्रों में सदगोप एवं कैवर्त जैसी पशुपालक और मछुआरी (मछली पकड़ने वाली) जातियाँ भी सामाजिक स्तर में ऊपर उठकर किसानों जैसी स्थिति को प्राप्त करने लगीं। इस प्रकार, स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकालीन कृषि समाज में सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों के निर्धारण में जाति का महत्त्वपूर्ण भाग था। किन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि मध्यम क्रम में आने वाली जातियों का सामाजिक स्तर उनकी आर्थिक स्थिति में उन्नति होने के साथ-साथ उन्नत होने लगा था।

**प्रश्न 7.**
सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में जंगलवासियों की जिंदगी किस तरह बदल गई?
**उत्तर:**
वाणिज्यिक खेती का असर, जंगलवासियों की जिंदगी पर भी पड़ता था। जंगल के उत्पाद; जैसे-शहद, मधुमोम और लाक
की बहुत माँग थी। लाक जैसी कुछ वस्तुएँ तो सत्रहवीं सदी में भारत से समुद्र पार होने वाले निर्यात की मुख्य वस्तुएँ थीं। हाथी भी पकड़े और बेचे जाते थे। व्यापार के तहत वस्तुओं की अदला-बदली भी होती थी। कुछ कबीले भारत और अफ़गानिस्तान के बीच होने वाले जमीनी व्यापार में लगे थे; जैसे-पंजाब का लोहानी कबीला। इस क़बीले के लोग गाँवों और शहरों के बीच होने वाले व्यापार में भी शिरकत करते थे। सामाजिक कारणों से भी जंगलवासियों के जीवन में बदलाव आए। कबीलों के भी सरदार होते थे, कई कबीलों के सरदार जमींदार बन गए, कुछ तो राजा भी हो गए। ऐसे में उन्हें सेना खड़ी करने की ज़रूरत हुई। उन्होंने अपने ही खानदान के लोगों को सेना में भर्ती किया; या फिर अपने ही भाई-बंधुओं से सैन्य सेवा की माँग की।


https://www.evidyarthi.in

हालाँकि कबीलाई व्यवस्था से राजतांत्रिक प्रणाली की तरफ़ संक्रमण बहुत पहले ही शुरू हो चुका था, लेकिन ऐसा लगता है कि सोलहवीं सदी में आकर ही यह प्रक्रिया पूरी तरह विकसित हुई। इसकी जानकारी हमें उत्तर-पूर्वी इलाकों में कबीलाई राज्यों के बारे में आइन की बातों से मिलती है। उदाहरण के तौर पर, सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कोच राजाओं ने पड़ोसी कबीलों के साथ एक के बाद एक युद्ध किया और उन पर अपना कब्ज़ा जमा लिया। जंगल के इलाकों में नए सांस्कृतिक प्रभावों के विस्तार की भी शुरुआत हुई। कुछ इतिहासकारों ने तो दरअसल यह भी सुझाया है कि नए बसे इलाकों के खेतिहर समुदायों ने जिस तरह धीरे-धीरे इस्लाम को अपनाया, उसमें सूफ़ी संतों (पीर) ने एक बड़ी भूमिका अदा की थी।

**प्रश्न 8.**
मुग़ल भारत में ज़मींदारों की भूमिका की जाँच कीजिए।

**अथवा**

16वीं – 17वीं शताब्दी में मुगल भारत में जमींदारों की भूमिका की व्याख्या कीजिए। (All India 2014)
**उत्तर:**
मुग़ल भारत में जमींदार जमीन के मालिक होते थे। ग्रामीण समाज में उनकी ऊँची हैसियत होती थी। जमींदारों की समृद्धि
का मुख्य कारण था, उनकी विस्तृत व्यक्तिगत जमीन, जिसे 'मिल्कियत' कहा जाता था। मिल्कियत जमीन पर दिहाड़ी मजदूर काम करते थे। ज़मींदारों को राज्य की ओर से कर वसूलने का अधिकार प्राप्त होता था। इसके बदले उन्हें वित्तीय मुआवजा मिलता था। जमींदारों के पास अपने किले भी होते थे। अधिकांश ज़मींदार अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भी रखते थे। ज़मींदारों ने खेती लायक जमीनों को बसाने में अगुआई की और खेतिहरों को खेती के साजो-सामान व उधार देकर उन्हें वहाँ बसने में भी मदद की।

जमींदारी की खरीद-बिक्री से गाँवों में मौद्रीकरण की प्रक्रिया में तेजी आई। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि ज़मींदार एक प्रकार का हाट (बाजार) स्थापित करते थे जहाँ किसान अपनी फ़सलें बेचने आते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि जमींदार शोषणकारी नीति अपनाते थे। लेकिन किसानों के साथ उनके रिश्तों में पारस्परिकता, पैतृकवाद और संरक्षण की भावना रहती थी। यही कारण है कि तत्कालीन साहित्यों में जमींदारों को अत्यंत क्रूर शोषक के रूप में नहीं दिखाया गया है। किसान प्रायः राजस्व अधिकारियों को ही दोषी ठहराते थे। परवर्ती काल में अनेक कृषक विद्रोह हुए और उनमें राज्य के खिलाफ़ जमींदारों को अकसर किसानों का समर्थन और सहयोग मिला।

**प्रश्न 9.**
पंचायत और गाँव का मुखिया किस तरह से ग्रामीण समाज का नियमन करते थे? विवेचना कीजिए।

**अथवा**

16वीं – 17वीं सदियों में मुग़ल ग्रामीण भारतीय समाज में पंचायत की भूमिका की व्याख्या कीजिए। (Delhi 2014)
**उत्तर:**
16वीं और 17वीं शताब्दियों के काल में ग्रामीण समाज में पंचायत और मुखिया का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान था। ग्रामीण
समाज के नियमन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। पंचायत-ग्राम पंचायत सामान्यतः ग्राम


https://www.evidyarthi.in

के सम्मानित एवं महत्त्वपूर्ण बुजुर्गों, जिसके पास अपनी सम्पत्ति के पुश्तैनी अधिकार होते थे, की सभा होती थी। इस प्रकार, ग्राम पंचायत एक अल्पतंत्र के रूप में कार्य करती थी जिसमें भिन्न-भिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों के लोगों का प्रतिनिधित्व होता था। किन्तु छोटे-मोटे एवं नीच कार्य करने वाले खेतिहर मजदूरों को संभवतः पंचायत में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता था। मुखिया : मुकद्दम अथवा मंडल-प्रत्येक पंचायत का एक मुखिया अथवा अध्यक्ष होता था, जिसे मुकद्दम अथवा मंडल कहा जाता था। तत्कालीन स्रोतों से पता लगता है कि मुखिया का चुनाव ग्राम के बुजुर्गों की सहमति से किया जाता था। चुनाव के बाद उसे जमींदार से स्वीकृत करवाना आवश्यक था।

मुखिया अपने पद पर तभी तक बना रह सकता था जब तक उसे ग्राम के बुजुर्गों का विश्वास प्राप्त होता था। बुजुर्गों का विश्वास खोने के साथ ही उसे अपने पद से वंचित होना पड़ता था। पंचायत के कार्य एवं आय के स्रोत-पंचायत ग्राम की हर प्रकार की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होती थी। ग्राम की रक्षा, स्वास्थ्य एवं सफाई, प्रारंभिक शिक्षा, न्याय, सिंचाई, निर्माण-कार्य, मनोरंजन, जनसामान्य के नैतिक, धार्मिक विकास की व्यवस्था आदि सभी कार्य पंचायत के द्वारा ही किए जाते थे। ग्राम की आय एवं व्यय का हिसाब रखना मुखिया का एक प्रमुख कार्य था। वह पंचायत के पटवारी की सहायता से इस कार्य को सम्पन्न करता था। प्रत्येक पंचायत का अपना कोष अथवा ख़ज़ाना होता था, जिसमें ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा योगदान किया जाता था। कोष की धनराशि से ही पंचायत के विभिन्न प्रकार के खर्चे को चलाया जाता था।

समय-समय पर ग्राम का दौरा करने वाले कर अधिकारियों की खातिरदारी का खर्च भी इसी धनराशि से पूरा किया जाता था। इस कोष का उपयोग बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपत्तियों का सामना करने के लिए तथा कुछ सामुदायिक कार्यों को करने के लिए भी किया जाता था। उदाहरण के लिए, मिट्टी के छोटे-छोटे बाँध बनाने अथवा नहर खोदने के कार्य, जो किसान स्वयं नहीं कर सकते थे, पंचायत के कोष से करवाए जाते थे। पंचायत एवं मुखिया ग्रामीण समाज के नियामक के रूप में-मध्यकालीन भारत में पंचायत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य ग्रामीण समाज का नियमन करना था। पंचायत यह प्रयास करती थी कि ग्राम में रहने वाले भिन्न-भिन्न समुदायों के लोग अपनी-अपनी जाति के नियमों का पालन करें तथा अपनी जाति की सीमाओं को पार न करें। इस प्रकार, "जाति की अवहेलना रोकने के लिए जन सामान्य के आचरण पर नियंत्रण स्थापित करना मुखिया अथवा मंडल का एक महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता था। हमें याद रखना चाहिए कि हिन्दू समाज में जाति-नियम अत्यधिक कठोर थे।

पूर्वी भारत में सभी विवाह मंडल की उपस्थिति में सम्पन्न किए जाते थे। जाति-नियम की किसी भी प्रकार अवहेलना करने वाले व्यक्ति को कठोर सज़ा का भागीदार बनना पड़ता था। पंचायत उस पर जुर्माना लगा सकती थी अथवा उसे जाति से बहिष्कृत करने जैसी कठोर सजा भी दे सकती थी। जाति बहिष्कार की सजा तीन रूपों में दी जाती थी; अपराधी व्यक्ति के जाति के अन्य सदस्यों के साथ खान-पान पर प्रतिबंध लगाकर, जाति में विवाह संबंधों पर निषेध लगाकर, अभियुक्त को संपूर्ण सामान्य समुदाय से बाहर निकालकर। जाति से निकाला गया व्यक्ति ग्राम समुदाय की दृष्टि में भी अपराधी माना जाता था। उसे पंचायत द्वारा निर्धारित समय के लिए ग्राम छोड़ना पड़ता था और इस अवधि में वह अपनी जाति और व्यवसाय अर्थात् पेशे से भी वंचित हो जाता था। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि संपूर्ण जाति समुदाय से बाहर कर देने जैसी कठोर सज़ा केवल कुछ ही समय के लिए दी जाती थी। वास्तव में, इन नियमों एवं नीतियों का प्रमुख उद्देश्य जाति संबंधी रीति-रिवाजों की अवहेलना पर नियंत्रण स्थापित करना था ताकि समाज में व्यवस्था बनी रहे।


https://www.evidyarthi.in/

जाति पंचायत-ग्राम पंचायत के अतिरिक्त ग्राम में प्रत्येक जाति की अपनी पंचायत भी होती थी, जिसे जाति पंचायत के नाम से जाना जाता था। मध्यकालीन भारतीय समाज में जाति पंचायतों का अत्यधिक महत्त्व था और ये बहुत शक्तिशाली होती थीं। जाति पंचायतें शक्तिशाली निकायों के रूप में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करती थीं। वे भिन्न-भिन्न जातियों के मध्य होने वाले दीवानी के झगड़ों का फैसला करती थीं। ज़मीन से संबंधित दावेदारियों के झगड़ों का फैसला भी जाति पंचायतों द्वारा किया जाता था। जाति पंचायतों का एक प्रमुख कार्य जाति-विशेष के सदस्यों के आचरण को नियंत्रित करना था। वे विवाह संबंधों में जातिगत मानदंडों के अनुसरण पर बल देती थीं और यह निश्चित करती थीं कि विवाह संबंधों में जातीय मानदंडों का पालन किया जा रहा था या नहीं। ग्राम के उत्सवों में जाति के किस सदस्य को कितना महत्त्व दिया जाएगा, इसका

निश्चय भी जाति पंचायत के द्वारा ही किया जाता था। फौजदारी के मामलों के अतिरिक्त अन्य अधिकांश मामलों में राज्य भी जाति पंचायत के निर्णयों को महत्त्व देता था। जाति पंचायत अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करती थी तथा उनके साथ होने वाले अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती थी। यदि ऊँची जातियों के लोगों अथवा राज्य के अधिकारियों द्वारा जबर्दस्ती कर वसूल किया जाता था अथवा बलपूर्वक बेगार के लिए विवश किया जाता था, तो इसकी शिकायत जाति पंचायत से की जा सकती थी। हमें याद रखना चाहिए कि निचली जाति के किसानों तथा राज्य के अधिकारियों अथवा स्थानीय जमींदारों से संबंधित झगड़ों में पंचायत का निर्णय सभी मामलों में एक जैसा नहीं होता था।

उल्लेखनीय है कि जाति पंचायत के निर्णय सदैव निष्पक्ष नहीं होते थे। प्रभावशाली एवं साधन सम्पन्न व्यक्तियों के प्रति यह प्राय: उदार निर्णय लेती थी। कभी-कभी व्यक्तिगत द्वेष के आधार पर भी जाति-बहिष्कार जैसी कठोर सज़ा दे दी जाती थी। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि सम्पन्न और उच्च वर्गों की अपेक्षा निर्धनों तथा निम्नवर्गों पर पंचायत का प्रभाव अधिक होता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि संपन्न और उच्च वर्गों के लोग पंचायत के आपत्तिजनक फैसलों के विरुद्ध कचहरियों और न्यायालयों में जाने को तैयार रहते थे, किन्तु निम्न जातीय और निर्धन व्यक्ति अपनी अज्ञानता और आर्थिक स्थिति के कारण ऐसा करने में असमर्थ थे।



https://www.evidyarthi.in